शोध संचयन
A Refereed Research Journal
And a complete Periodical dedicated to
Humanities & Social Science Research
ISSN 0975 1254 (PRINT)
ISSN 2249-9180 (ONLINE)
www.shodh.net
Vol. 17
Issue 1&2
15, Jan- July, 2026

भारतीय ज्ञान परंपरा में स्त्री चेतना के स्वर

बीज शब्द :

स्त्री चेतना, भारतीय चिंतन में नारी, पितृसत्तात्मक व्यवस्था, शक्ति स्वरूप, अधिकार

भारतीय ज्ञान परंपरा का विशाल और बहुआयामी इतिहास, स्त्री चेतना के स्वरों को एक सरल रैखिक कथा के रूप में प्रस्तुत करने के लिए बहुत जटिल है। यह एक ऐसा सुगठित स्वर-संगीत है जिसमें वैदिक काल के उन्नत स्वर, उपनिषदों की बौद्धिक गूँज, पौराणिक काल की आक्रोश और करुण ध्वनियाँ, भक्ति काल की क्रांतिकारी तान, और आधुनिक युग की विद्रोही एवं मुक्ति की ललकार सभी सम्मिलित हैं। भारतीय ज्ञान परंपरा में स्त्री चेतना का सफर न तो पूर्णतः उत्पीड़न का इतिहास है और न ही निर्विवाद सम्मान की गाथा, बल्कि यह सत्ता, व्याख्या, विद्रोह और पुनर्व्याख्या का एक सतत संघर्ष है।

*****

शोधार्थी
ज्योती सिंह
हिंदी तथा आधुनिक भारतीय भाषा विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

भारतीय ज्ञान परंपरा में स्त्री चेतना के स्वर

वैदिक युग: ज्ञान और अनुष्ठान के केन्द्र में स्त्री:

भारतीय ज्ञान परंपरा के आदि ग्रंथों में स्त्रियों की उपस्थिति अत्यंत प्रभावशाली है। वैदिक काल (लगभग 1500-500 ईसा पूर्व) स्त्री चेतना के उच्च स्वरों का काल था। भारतीय परम्परा में "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता"[(मनुस्मृति 3.56) का उद्घोष नारी की महत्ता और उसके गरिमामय स्थान को स्पष्ट रूप से रेखांकित करता है। इस वाक्य का तात्पर्य यह है कि जहाँ नारी का सम्मान होता है, वहाँ ईश्वर और समस्त देवत्व का वास होता है। भारतीय चिंतन में नारी को केवल गृहस्थ जीवन का एक अंग भर नहीं माना गया, बल्कि उसे सम्पूर्ण सृष्टि और सामाजिक व्यवस्था की आधारशिला के रूप में प्रतिष्ठित किया गया। वह जीवनदायिनी, पोषणकारी और शक्ति स्वरूपा होने के साथ-साथ ऋषिकाओं, दार्शनिकों, कवयित्रियों और शिक्षिकाओं के रूप में ज्ञान परम्परा की संवाहक है।

वैदिक साहित्य में नारी को ज्ञान और धर्म का सहचर माना गया। ऋग्वेद में 27 स्त्री ऋषिकाओं का उल्लेख मिलता है जिन्होंने मंत्रों की रचना की। (Keith, 1925) गार्गी व मैत्रेयी ने ब्रह्मविद्या पर याज्ञवल्क्य से प्रश्न किए, जो उपनिषदों में दर्ज हैं"(Brihadaranyaka Upanishad- 3-6य 4-5)1

ब्रह्मवादिनियाँ और ऋषिकाएँ: ऋग्वेद में लगभग 27 स्त्री ऋषियों या ब्रह्मवादिनियों का उल्लेख मिलता है। इनमें अपाला, घोषा, लोपामुद्रा, विश्ववारा, मैत्रेयी और गार्गी जैसे नाम प्रमुख हैं। ये स्त्रियाँ न केवल ऋचाओं की रचयिता थीं, बल्कि गहन दार्शनिक चिंतन में भी संलग्न थीं। घोषा ने दस मंडलों की रचना की, जो दीर्घकालिक बीमारी से मुक्ति के बाद जीवन के प्रति उनके उल्लास को दर्शाती हैं। अपाला ने इंद्र को प्रसन्न करने के लिए सुन्दर मंत्रों की रचना की। गार्गी और मैत्रेयी का बौद्धिक वर्चस्व: बृहदारण्यक उपनिषद में गार्गी वाचक्नवी का प्रसंग स्त्री बौद्धिकता का शिखर है। राजा जनक के दरबार में आयोजित एक शास्त्रार्थ में, गार्गी ने महर्षि याज्ञवल्क्य जैसे विद्वान से ब्रह्मांड की रचना और सृष्टि के मूल तत्त्व पर जटिल प्रश्न किए। उनका साहस और ज्ञान इतना प्रभावशाली था कि याज्ञवल्क्य को भी उनकी प्रशंसा करनी पड़ी और चेतावनी दी कि अधिक प्रश्न पूछने पर उनका सिर फट सकता है। शास्त्रार्थ के लिए आह्वान करती हैं,

"युवां मृगेव वारणा मृगण्यंवो दोषावस्तोर्हविषा निह्वायामहे ।
युवम् होत्रांतथा जुह्वते नरेशं जनाय बहवः शुभस्यती"

(हे नायक अश्विनीकुमारों! जिस प्रकार शिकारी बड़े-बड़े सिंहों का मृगया में पता लगाते हैं, वैसे ही ब्रह्मचारिणी कन्याएं भी रात-दिन प्रेम-पूरित हविष्य द्वारा आपका आह्वान करती हैं।)

इसी प्रकार, मैत्रेयी ने धन-दौलत के स्थान पर 'अमृतत्व' (अमरत्व) के ज्ञान को प्राप्त करने की इच्छा जताई, जो भौतिकता से परे आत्मिक जिज्ञासा के प्रति स्त्री चेतना की ओर इशारा करती है।

स्त्रियों में प्राचीन काल में बहुत स्तर पर पाबंदियां भी थी। उनको अबला समझा जाता था।

वशिष्ठ के अनुसार, "स्त्री स्वतंत्रता के योग्य नहीं है। बचपन में पिता, युवावस्था में पति तथा बुढ़ापे में पुत्र उसकी रक्षा करते हैं।"

मनु ने तो यहाँ तक कहा है कि "पति के दुराचारी तथा चरित्रहीन होने की दशा में भी पत्नी का कर्त्तव्य है कि वह देवता के समान उसकी पूजा करें।"

सामाजिक स्थिति में सुधार होने के साथ इस काल में स्त्रियाँ शिक्षा ग्रहण करती थीं, उपनयन संस्कार से गुजरती थीं और यहाँ तक कि अपने पति का चयन करने का अधिकार (स्वयंवर) भी रखती थीं। वे धार्मिक अनुष्ठानों में सक्रिय भागीदारी निभाती थीं।

हालाँकि, यह ध्यान रखना आवश्यक है कि वैदिक समाज भी पितृसत्तात्मक था और पुत्र की कामना जैसे सामाजिक दबाव मौजूद थे। फिर भी, ज्ञान के क्षेत्र में स्त्री की भागीदारी और उसकी आवाज निर्विवाद रूप से महत्वपूर्ण थी।

पौराणिक एवं शास्त्रीय युग: परिधि की ओर धकेलते स्वर:

वैदिक काल के बाद का दौर, विशेषकर पौराणिक काल (लगभग 500 ईसा पूर्व से 500 ईस्वी), स्त्री की स्थिति में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन का साक्षी रहा। समाज में कानून और नियमों का महत्व बढ़ा और स्त्रियों को परिभाषित करने वाले शास्त्रों की रचना हुई। मनुस्मृति जैसे ग्रंथों में स्त्री को पुरुष के अधीन और सदैव संरक्षण की आवश्यकता वाला प्राणी बताया गया (''पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने...'')। इसने स्त्री की स्वायत्तता को सीमित कर दिया।

लेकिन यहीं पर भारतीय ज्ञान परंपरा की जटिलता सामने आती है। एक ओर जहाँ शास्त्र स्त्री को दास्यभाव में बाँध रहे थे, वहीं दूसरी ओर साहित्य और पुराण उन्हें शक्ति, बुद्धि और विद्रोह का प्रतीक बना रहे थे।

देवी का शक्ति स्वरूप: स्त्री को केवल एक भौतिक शरीर नहीं, बल्कि समस्त ब्रह्मांड की सृष्टि, पालन और संहार की

शक्ति (शक्ति) के रूप में देखा गया। दुर्गा, काली, चंडी आदि देवियाँ अजेय शक्ति का प्रतिनिधित्व करती थीं। यह विरोध ाभास स्पष्ट करता है कि स्त्री की छवि एक साथ कोमल और भयानक, पालनहार और विनाशक दोनों थी। यह स्त्री के बहुआयामी व्यक्तित्व की मान्यता थी।

सीता और द्रौपदी: पीड़ा और प्रतिरोध के प्रतीक: रामायण और महाभारत की नायिकाएँ स्त्री चेतना के विविध पहलुओं को उजागर करती हैं। सीता आदर्श, त्याग, धैर्य और सहनशीलता की मूर्ति हैं, लेकिन उनकी कहानी परित्याग और अन्याय के प्रति एक मौन विद्रोह भी है। अग्निपरीक्षा और अंततः धरती माँ की गोद में समा जाने का उनका निर्णय, एक गहन आत्मसम्मान और स्वायत्तता का परिचायक है।

द्रौपदी, इसके विपरीत, सीधे और मुखर विद्रोह की प्रतिमूर्ति हैं। चीरहरण के समय उनका प्रश्न ''अंधे की संतान अंधे!'' और भरी सभा में अपने पतियों और कौरवों को ललकारना, पितृसत्तात्मक व्यवस्था के प्रति एक जबर्दस्त चुनौती थी। वह न्याय की माँग करती हैं और अपने अपमान का बदला लेती हैं। द्रौपदी का चरित्र स्त्री की गरिमा, क्रोध और न्यायपूर्ण दावे का प्रतिनिधित्व करता है।

कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' का अध्ययन करने पर डॉ. रामशरण शर्मा इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि "निम्न वर्षों में मातृप्रधानता के कई तत्त्वों के बने रहने के कारण उनके बीच स्त्रियों का कुछ स्थान था' तथा 'ये सभी निषेधाज्ञाएं बताती हैं कि शूद्रों में विवाह का बंधन उतना प्रबल नहीं था जितना उच्च वर्णों में, जिनकी महिलाएं पुरुषों पर अधिक निर्भर रहती थीं।" निम्न वर्ण के लोगों को अपना पेट पालने के लिए सपरिवार काम करना पड़ता है। उनका पूरा परिवार स्वामी पर अवलंबित होता है, अतः वे सपरिवार स्वामी की सेवा करते हैं। उनकी औरतें घर में रहना गवारा ही नहीं कर सकतीं। इसलिए उन्हें बाहर निकलने की आजादी विवशतः मिल जाती है।

मध्यकाल में नारी चेतना और ज्ञान परंपरा:

भक्ति आंदोलन (लगभग 7वीं से 17वीं शताब्दी) ने स्त्री चेतना के स्वरों को एक नया, क्रांतिकारी मंच प्रदान किया। इस आंदोलन ने जाति, लिंग और वर्ग की बाधाओं को तोड़ते हुए सीधे ईश्वर से जुड़ने का मार्ग प्रशस्त किया।

अक्का महादेवी: देह से परे का स्वर: 12वीं शताब्दी की वीरशैव संत अक्का महादेवी ने सामाजिक बंधनों का खुलकर विरोध किया। उन्होंने वस्त्र तक त्याग दिए और ''ऐसे पुरुष क्या जो मुझे देखकर कामुक होते हैं?'' कहकर पुरुष- दृष्टि की वस्तुकरण को चुनौती दी। उनकी वचन काव्य रचनाएँ शरीर, समाज और लिंग से परे एक निर्विकार चेतना की अभिव्यक्ति हैं। उन्होंने ईश्वर (चेन्नामल्लिकार्जुन) को अपना पति मानकर सांसारिक विवाह संस्था को ही नकार दिया।

मीराबाई: भक्ति के माध्यम से मुक्ति: राजस्थान की राजकुमारी मीराबाई ने भक्ति को स्त्री मुक्ति का हथियार बनाया। उन्होंने पति की मृत्यु के बाद सती होने से इनकार कर दिया और सामाजिक रीति-रिवाजों की अवहेलना करते हुए, कृष्ण को अपना सर्वस्व मानकर संन्यासिनी का जीवन अपना लिया। उनके पद केवल भक्ति के नहीं, बल्कि पितृसत्ता के खिलाफ एक साहसिक विद्रोह के गीत हैं। ''मेरे तो गिरिधर गोपाल, दूसरो न कोय...'' का अर्थ था कि अब समाज नहीं, बल्कि केवल ईश्वर ही उनका नियम है।

ललद्येद और आंडाल: कश्मीर की सूफी संत ललद्येद (ललेश्वरी) ने अपने वाखों के माध्यम से सामाजिक कुरीतियों और धार्मिक पाखंड पर करारी चोट की। वहीं, दक्षिण भारत की आंडाल ने अपने दिव्य प्रेम (तिरुप्पावई) के माध्यम से ईश्वर से विवाह करने का अपना अधिकार स्थापित किया।

भक्ति काल ने स्त्री को सार्वजनिक क्षेत्र में एक वाणी दी और सिद्ध किया कि आध्यात्मिक अधिकार प्राप्त करने के लिए लिंग कोई बाधा नहीं है।

आधुनिक युग:शिक्षा,अधिकार और पुनर्व्याख्या का संघर्ष:

औपनिवेशिक काल और उसके बाद के दौर में स्त्री चेतना के स्वर और भी स्पष्ट और संगठित हुए। पश्चिमी शिक्षा और समाज सुधार आंदोलनों ने स्त्री शिक्षा और उनके अधिकारों के प्रश्न को केंद्र में ला दिया।

समाज सुधारक: राजा राममोहन रॉय, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, ज्योतिबा फुले, सावित्रीबाई फुले और पंडिता रमाबाई जैसे व्यक्तित्वों ने सती प्रथा, विधवा पुनर्विवाह और स्त्री शिक्षा जैसे मुद्दों पर संघर्ष किया। सावित्रीबाई फुले ने लड़कियों के लिए पहला स्कूल खोलकर एक ऐतिहासिक कार्य किया।

स्वतंत्रता संग्राम में स्त्रियाँ: भारत के स्वतंत्रता आंदोलन में स्त्रियों ने बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया। सरोजिनी नायडू, कस्तूरबा गांधी, अरुणा आसफ अली, कैप्टन लक्ष्मी सहगल जैसी अनेक महिलाओं ने न केवल आंदोलनों का नेतृत्व किया, बल्कि जेल की यातनाएँ भी सहीं। इस दौरान स्त्री चेतना राष्ट्रीय पहचान और स्वाधीनता से जुड़ गई।

साहित्य और विचारधारा: महादेवी वर्मा, सुभद्रा कुमारी चौहान, इस्मत चुगताई, अमृता प्रीतम, महाश्वेता देवी और अरुंध ति रॉय जैसी लेखिकाओं ने अपनी रचनाओं के माध्यम से स्त्री के आंतरिक संघर्ष, यौनिकता, शोषण और मुक्ति को नए सिरे से

परिभाषित किया। इन्होंने भारतीय ज्ञान परंपरा की पुरुष-केंद्रित व्याख्याओं को चुनौती दी और उसकी नई, स्त्री-केंद्रित व्याख्या प्रस्तुत की। सुभद्रा कुमारी चौहान ने अपने काव्य के द्वारा प्रणय भावना, वात्सल्य भावना तथा राष्ट्रप्रेम के गीत गाए हैं। स्वतंत्रता की वेदी पर केवल पुरुषों को ही नहीं नारी को भी आत्मदान करना होगा। नारी को प्रेरित करती हुई वे लिखती हैं:

"अबलाएँ उठ पड़ें देश में, करें युद्ध घमसान सखी।
पन्द्रह कोटि असहयगिनीयां, दहला दें ब्रह्मांड सखी।।"

सुमित्रा कुमारी सिन्हा, विद्यावती कोकिल तथा शांति मेहरोत्रा ने हिन्दू समाज में नारी की स्थिति का चित्रण करते हुए उसे जागरण का संदेश दिया है:

"लक्ष्य मेरा दूर भी है, पास भी है।
मुक्ति भी है प्राप्त बंधन भी मिले हैं।।"

समकालीन परिप्रेक्ष्य:

आज नारी भारतीय शिक्षा, शोध, विज्ञान, साहित्य और सामाजिक विकास में नेतृत्वकारी भूमिका निभा रही है। नई शिक्षा नीति में समावेशी शिक्षा और लैंगिक समानता पर बल दिया गया है। नारी विमर्श भारतीय ज्ञान परम्परा को पुनर्परिभाषित कर रहा है। समकालीन स्त्रियाँ परम्परा और आधुनिकता के बीच सेतु का कार्य कर रही हैं। कार्य कर रही हैं। सामाजिक, आर्थिक ,धार्मिक क्षेत्र युद्ध के मैदान से लेकर खेल के मैदान तक, गृहणी से लेकर शासन सत्ता तक सभी में अपना योगदान दे रही है। यह स्त्री चेतना का ही परिणाम है। जो अपनी योग्यता के आधार पर अपने को सभी जगह स्थापित कर पा रही है। आत्मनिर्भरता और आत्मविश्वास: आधुनिक नारी अब केवल पुरुष की 'गुलामी' या पितृसत्तात्मक व्यवस्था के अधीन नहीं है, बल्कि वह आर्थिक और मानसिक रूप से आत्मनिर्भर और आत्मविश्वासी है।

अस्मिता की खोज: वह स्वयं की पहचान और अस्मिता को स्थापित करने के लिए संघर्ष कर रही है, न कि किसी और द्वारा दी गई पहचान के सहारे।

विभिन्न स्वरूप: समकालीन नारी चेतना को केवल एक ही तरह से नहीं देखा जा सकता, क्योंकि हर स्त्री की मुक्ति की परिभाषा उसके वर्ग, अनुभव और सामाजिक-आर्थिक पृष्ठभूमि के अनुसार अलग है। 'पर्सनल इज पोलिटिकल' का नारा: नारी चेतना इस सिद्धांत पर आधारित है कि स्त्री के निजी संघर्ष और अनुभव भी राजनीतिक होते हैं और समाज को उन पर ध्यान देना चाहिए। सशक्त अभिव्यक्ति: नारी अब अपनी बात को खुलकर कहने में सक्षम है और अपने अनुभवों को व्यक्त करने के लिए साहित्य, कला और अन्य माध्यमों का उपयोग करती है, भले ही उसे सामाजिक विरोध का सामना करना पड़े। सकारात्मक और नकारात्मक प्रभाव: समाज में आए बदलावों का प्रभाव स्त्री के जीवन पर सकारात्मक और नकारात्मक दोनों तरह से पड़ा है। आर्थिक सबलता के साथ-साथ उसे कार्यस्थल पर शोषण और भेदभाव जैसी समस्याओं का भी सामना करना पड़ रहा है। साहित्यिक प्रतिबिंब: समकालीन महिला लेखिकाएं अपने लेखन के माध्यम से नारी चेतना को नए आयाम दे रही हैं। वे स्त्री के मनोवैज्ञानिक, सामाजिक और भावनात्मक पहलुओं को उजागर कर रही हैं,

निष्कर्ष :

भारतीय ज्ञान परंपरा में स्त्री चेतना के स्वरों की यात्रा अत्यंत गतिशील और बहुआयामी रही है। यह वैदिक ऋषिकाओं के गर्वोक्ति से लेकर भक्ति संतों के विद्रोह और आधुनिक लेखिकाओं की मुक्ति की घोषणा तक फैली हुई है। इस यात्रा में स्त्री ने अपनी भूमिका को एक अनुष्ठानकर्ता, दार्शनिक, विद्रोही, भक्त, योद्धा और लेखक के रूप में लगातार पुनर्परिभाषित किया है।

आज का युग इस यात्रा का नवीनतम अध्याय है। डिजिटल माध्यम, कानूनी जागरूकता और वैश्विक नारीवादी विमर्श ने स्त्री चेतना के स्वरों को और भी शक्तिशाली बना दिया है। समकालीन भारत में स्त्री शिक्षा, आर्थिक स्वावलंबन, कानूनी अधिकार और राजनीतिक भागीदारी के लिए संघर्ष जारी है। भारतीय ज्ञान परंपरा में छिपे उन प्रगतिशील स्वरों को पहचानना और उन्हें पुनर्जीवित करना, जो स्त्री को सम्मान और समानता का दर्जा देते हैं, आज के संदर्भ में अत्यंत प्रासंगिक है। स्त्री चेतना का स्वर अब कोई गूँज नहीं, बल्कि मुख्यध ारा का वह स्वर है जो भारतीय ज्ञान परंपरा के वर्तमान और भविष्य को निर्मित कर रहा है।

संदर्भ ग्रन्थ:

1.मनुस्मृति 3.56
2.बृहदारण्यक उपनिषद् ,3.6य 4.5
3. ऋग्वेद 10ध् 40ध् 10
4.संपादक डॉ वीरेंद्र यादव भारत में महिला सशक्तिकरण कल आज और कल कौटिल्य प्रकाशन नई दिल्ली संस्करण 2025 पृष्ठ संख्या 196
5.वहीं, पृष्ठ संख्या 196
6. विश्वनाथ त्रिपाठी, मीरा का काव्य, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण 2019 पृष्ठ संख्या 20
7. वहीं पृष्ठ संख्या 109
8. सुभद्रा कुमारी चौहान, मुकुल, पृष्ठ संख्या 93
9. विशंभर मानव, नई कविता नए कवि, पृष्ठ संख्या 117

◆◆◆